नियमसार ७३ वाँ श्लोक है।

शुद्धनिश्चयनयेन विमुक्तौ सन्सृतावपि च नास्ति विशेषः।
एवमेव खलु तत्त्व-विचारे शुद्ध-तत्त्व-रसिकाः प्रवदन्ति।।७३।।

श्लोकार्थ :— **शुद्धनिश्चयनय से...** परमार्थदृष्टि से, वस्तुस्वभाव की त्रिकाल सनातन स्वभाव की दृष्टि से। **मुक्ति में तथा संसार में अन्तर नहीं है;...** आहा! सनातन सत्य वस्तु, जिसमें एक समय की पर्याय भी गौण है; त्रिकाली वस्तु, अखण्ड आनन्द पूर्ण वस्तु, अनादि-अनन्त शुद्ध सत्तारूप एक चीज़, वह और संसार अवस्था, दोनों में कोई अन्तर नहीं है। उसकी मुक्त अवस्था, उस (वस्तु की) मुक्त दशा, वह वस्तु इस सनातन सत्य

तत्त्व की मुक्तदशा और इसकी संसारदशा, दोनों पर्यायनय का विषय, व्यवहारनय का विषय दोनों समान हैं, दोनों में कोई अन्तर नहीं है। आहाहा! कहाँ निगोद की दशा, कहाँ सिद्ध की दशा! शुद्धनिश्चयनय से अन्तर की दृष्टि से देखें, वस्तुस्वभाव सहजात्मस्वरूप सहज आत्मस्वरूप त्रिकाल-इस दृष्टि से देखें तो **मुक्ति में तथा संसार में अन्तर नहीं है;...** आहाहा!

ऐसा ही वास्तव में,... किसी को ऐसा लगे कि यह क्या?-कि **ऐसा ही वास्तव में, तत्त्व विचारने पर...** वास्तविक ज्ञायकतत्त्व को विचारने पर, ज्ञायकस्वभाव त्रिकाली शाश्वत् चीज़ को विचारने पर। आहा! **(परमार्थ वस्तुस्वरूप का विचार अथवा निरूपण करने पर)..** निरूपण तो कथनशैली है परन्तु वस्तु के स्वभाव से देखें तो **शुद्धतत्त्व के रसिक पुरुष कहते हैं।** शुद्धतत्त्व के रसिक, आहाहा! द्रव्यस्वभाव के रसिक! ज्ञायक-स्वभावभाव, वह त्रिकाल स्वभावभाव, उसके रसिक पुरुष मुक्ति और संसार में कोई अन्तर नहीं कहते। आहाहा! लो! यह गुजराती आया। आहाहा!

वस्तुस्वरूप त्रिकाली देखने पर, सत्सनातन सत्य एकरूप ध्रुव की दृष्टि से देखने पर, मुक्त-सिद्ध अवस्था और संसार अवस्था दोनों में कोई अन्तर नहीं है। आहा!

श्रोता : अवस्थादृष्टि से या द्रव्यदृष्टि से? किस दृष्टि से?

पूज्य गुरुदेवश्री : द्रव्यदृष्टि से। द्रव्यदृष्टि कहो या निश्चयनय विषय कहो। शुद्धनिश्चयनय कहो या द्रव्यदृष्टि कहो। आहाहा! त्रिकाली ज्ञायकभाव की दृष्टि से देखने पर, संसार और मुक्ति दोनों पर्याय में कोई अन्तर नहीं है, दोनों व्यवहारनय का विषय है। है अवश्य, परन्तु व्यवहारनय का विषय है। निश्चय विषय में एकरूप प्रभु सनातन सत्य अनिर्मित, अनाश-विनाश नहीं होने से त्रिकाल एकरूप रहनेवाला तत्त्व, उसकी दृष्टि से देखने पर मुक्ति और संसार दोनों पर्याय है, इसलिये उस पर्याय में कोई अन्तर दिखाई नहीं देता। आहाहा! अब यह बात किस प्रकार बैठे? कहाँ निगोद का जीव, आहा! कहाँ उस निगोद के जीव में अनन्त-अनन्त जीव बाहर निकलने के नहीं। आहा! परन्तु पर्यायदृष्टि से देखें तो वह निगोद की पर्याय और सिद्ध की पर्याय दोनों व्यवहारनय है। आहाहा! त्रिकाली ज्ञायक की दृष्टि से देखने पर उस मुक्ति और संसार दोनों में कोई अन्तर नहीं है।

दोनों पर्यायनय का, व्यवहारनय का विषय है। है अवश्य, आहाहा! ऐसी बात! यहाँ तो अब एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, त्रीइन्द्रिय करना... इच्छामि पडिक्कमणा आता है न?

वस्तुरूप की दृष्टि से देखने पर वस्तु में पर्याय है ही नहीं। फिर संसार पर्याय हो, निगोद की अनन्त.. अनन्त पर्याय। आहाहा! जो निगोद के असंख्य शरीर, उसके एक शरीर में अनन्तवें भाग मुक्ति पाये और अनन्त-अनन्त गुने रह गये परन्तु वह सब पर्याय का अन्तर है, वस्तु तो भगवान सनातन (सत्य प्रभु है)। आहाहा! व्यवहार में अन्तर है, वह निश्चयदृष्टि में अन्तर नहीं है। समझ में आया? आहा! ऐसी दृष्टि हुए बिना पूर्ण सत्य का स्वीकार नहीं हो सकता। एक समय की पर्यायदृष्टि, चाहे तो मुक्ति है, वह पर्याय है, पर्यायदृष्टि तो एक समय है और यह त्रिकाली चीज़ है, इस त्रिकाल चीज़ की अपेक्षा से एक समय की मुक्तपर्याय या एक समय की संसारपर्याय दोनों एक समय है। दोनों व्यवहारनय है। क्योंकि एक के बाद एक है। वस्तु तो सनातन अनादि-अनन्त एकरूप है। इस दृष्टि से देखने पर।

यही वास्तव में। पाठ में है न '**एवमेव' ऐसा ही वास्तव में, तत्त्व विचारने पर...** तत्त्ववस्तु भगवान पूर्णानन्द का विचार करने पर, परमार्थ वस्तुस्वरूप का विचार अथवा उसका ज्ञान करने पर। निरूपण अर्थात् कथन है। **शुद्धतत्त्व के रसिक पुरुष कहते हैं।** आहाहा! शुद्धतत्त्व के रसिक। आहाहा! जिसमें पर्याय का रसिकपना भी नहीं। राग का रसिकपना तो नहीं, निमित्त का तो रसिकपना नहीं, संयोगी चीज़ भगवान संयोग से है, उसकी बात भी यहाँ तो (नहीं) आहाहा! परमार्थ से बन्ध और मोक्ष दो नहीं, बन्ध और मोक्ष ही जिसमें नहीं, आहाहा! बन्ध और मोक्ष तो पर्याय है। अब ५० गाथा।

गाथा-५०

पुव्वुत्तसयलभावा परदव्वं परसहावमिदि हेयं।
सग-दव्व-मुवादेयं अंतर-तच्चं हवे अप्पा।।५०।।

पूर्वोक्तसकलभावाः परद्रव्यं परस्वभावा इति हेयाः।
स्वकद्रव्यमुपादेयं अन्तस्तत्त्वं भवेदात्मा।।५०।।

हेयोपादेयत्यागोपादानलक्षणकथनमिदम्। ये केचिद् विभावगुणपर्यायास्ते पूर्वं व्यवहार-नयादेशादुपादेयत्वेनोक्ताः शुद्धनिश्चयनयबलेन हेया भवन्ति। कुतः ? परस्वभावत्वात्, अत एव परद्रव्यं भवति। सकलविभावगुणपर्यायनिर्मुक्तं शुद्धान्तस्तत्त्वस्वरूपं स्वद्रव्यमुपादेयम्। अस्य खलु सहजज्ञानसहजदर्शनसहजचारित्रसहजपरम-वीतरागसुखात्मकस्य शुद्धान्तस्तत्त्व-स्वरूपस्याधारः सहजपरमपारिणामिकभावलक्षण-कारणसमयसार इति।

तथा चोक्तं श्रीमदमृतचन्द्रसूरिभिः ह्न

(शार्दूलविक्रीडित)

सिद्धान्तोऽय-मुदात्त-चित्त-चरितैर्मोक्षार्थिभिः सेव्यतां,
शुद्धं चिन्मयमेकमेव परमं ज्योतिः सदैवास्म्यहम्।
एते ये तु समुल्लसन्ति विविधा भावाः पृथग्लक्षणा-
स्तेऽहं नास्मि यतोऽत्र ते मम परद्रव्यं समग्रा अपि।।

(हरिगीत)

पर-द्रव्य हैं परभाव हैं पूर्वोक्त सारे भाव ही।
अतएव हैं ये त्याज्य, अन्तस्तत्त्व हैं आदेय ही॥५०॥

गाथार्थः—[पूर्वोक्तसकलभावाः] पूर्वोक्त सर्व भाव [परस्वभावाः] परस्वभाव हैं, [परद्रव्यम्] परद्रव्य हैं, [इति] इसलिए [हेयाः] हेय हैं, [अन्तस्तत्त्वं] अन्तःतत्त्व [स्वकद्रव्यम्] ऐसा स्वद्रव्य—[आत्मा]आत्मा—[उपादेयम्] उपादेय [भवेत्] है।

टीकाः—यह, हेय-उपादेय अथवा त्याग-ग्रहण के स्वरूप का कथन है।

जो कोई विभावगुणपर्यायें हैं, वे पहले (४९वीं गाथा में) व्यवहारनय के कथन द्वारा उपादेयरूप से कही गयी थीं, किन्तु शुद्धनिश्चयनय के बल से (शुद्धनिश्चयनय से) वे हेय हैं। किस कारण से ? क्योंकि वे परस्वभाव हैं और इसीलिए परद्रव्य हैं। सर्वविभाव-गुणपर्यायों से रहित शुद्ध-अन्तःतत्त्वस्वरूप स्वद्रव्य उपादेय है। वास्तव में सहजज्ञान-सहजदर्शन-सहजचारित्र-सहजपरमवीतरागसुखात्मक शुद्ध-अन्तःतत्त्वस्वरूप इस स्वद्रव्य का आधार सहजपरमपारिणामिकभावलक्षण (सहज परम पारिणामिक भाव जिसका लक्षण है — ऐसा) कारणसमयसार है।

इसी प्रकार (आचार्यदेव) श्रीमद्अमृतचन्द्रसूरि ने (श्री समयसार की आत्मख्याति नामक टीका में १८५ वें श्लोक द्वारा) कहा है कि —

(वीरछन्द)

हे उदात्तचित् चरित् मुमुक्षु ! यह सिद्धान्त करो सेवन।
शुद्ध एक चैतन्यमात्र घन हूँ सदैव मैं ज्योति परम॥
यह जो मुझसे सदा विलक्षण विविध विभाव प्रगट होते।
इन स्वरूप मैं नहीं कभी भी मेरे लिए सभी पर ये॥

श्लोकार्थ :— जिनके चित्त का चरित्र उदात्त (उदार, उच्च, उज्ज्वल) हैं — ऐसे मोक्षार्थी इस सिद्धान्त का सेवन करो कि मैं तो शुद्ध चैतन्यमय एक परम ज्योति ही सदैव हूँ; और यह जो भिन्न लक्षणवाले विविध प्रकार के भाव प्रगट होते हैं, वह मैं नहीं हूँ, क्योंकि वे सब मुझे परद्रव्य हैं।

गाथा-५० पर प्रवचन

पुव्वुत्तसयलभावा परदव्वं परसहावमिदि हेयं।
सग-दव्व-मुवादेयं अंतर-तच्चं हवे अप्पा।।५०।।

पर-द्रव्य हैं परभाव हैं पूर्वोक्त सारे भाव ही।
अतएव हैं ये त्याज्य, अन्तस्तत्त्व हैं आदेय ही॥५०॥

आहाहा! पचासवीं गाथा जरा कठिन है, सख्त है। यहाँ तो क्षायिकभाव भी व्यवहारनय के विषय में ले लिया है। पंचम पारिणामिकभाव जो ज्ञायकभाव, उसकी

अपेक्षा से उदयभाव और क्षायिकभाव दोनों व्यवहारनय का विषय है। यहाँ निश्चय में वह आता नहीं। आहा! ऐसा सूक्ष्म! लोग पूरे दिन रुपये में उलझे होते हैं। आहाहा!

एक प्रकार से कहें तो एक ही प्रभु एक ओर आत्मा तथा एक ओर विकल्प और पर्याय-यह सब लोक में, पर में जाता है। आहाहा! एकरूप स्वरूप भगवान आत्मा की दृष्टि में तो उसकी पर्याय में भी (संसार और मुक्ति) दोनों में अन्तर नहीं तो राग-प्रशस्त राग और अप्रशस्त राग में अन्तर है-ऐसा कुछ है नहीं। आहाहा!

टीका :— **यह, हेय-उपादेय...** छोड़नेयोग्य और आदरनेयोग्य। **अथवा त्याग-ग्रहण के स्वरूप का कथन है।** आहाहा! **जो कोई विभावगुणपर्यायें हैं,...** ये चार भाव, नारकादि उदयभाव, मतिज्ञान आदि क्षयोपशमभाव, केवलज्ञान आदि क्षायिकभाव, समकित और क्षयोपशम आदि। आहा! वे **जो कोई विभावगुणपर्यायें...** वे सब विभावगुणपर्यायें हैं। आहाहा! त्रिकाली सहज सनातन सत्य, जिसमें कोई घाल-मेल नहीं, जिसमें कोई उपजना और विनशना कुछ नहीं। आहाहा! ऐसी स्थिति में जो कोई विभावगुणपर्यायें हैं। आहाहा! चार ज्ञान के... अरे! चार भाव—उदय, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिकभाव। **वे पहले (४९वीं गाथा में) व्यवहारनय के कथन द्वारा उपादेयरूप से कही गयी थीं,...** जानने के लिये उपादान कहने में आयी थी क्योंकि वे हैं। हैं, वे जाननेयोग्य हैं; आदरनेयोग्य नहीं। आहाहा! वे ४९ गाथा में उपादेयरूप से कहने में आयी थी।

किन्तु शुद्धनिश्चयनय के बल से... आहाहा! अन्तर्दृष्टि के बल से, ध्रुवस्वरूप भगवान आत्मा शाश्वत् टंकोत्कीर्ण ऐसा जो भगवान त्रिकाली एकरूप स्वभाव, उसकी दृष्टि से **व्यवहारनय के कथन द्वारा उपादेयरूप से कही गयी थीं, किन्तु शुद्धनिश्चयनय के बल से वे हेय हैं।** आहाहा! वे चारों ही भाव हेय हैं। यहाँ तो अभी शुभराग को हेय मानना कठिन पड़ जाता है। दया, दान, व्रत, महाव्रत, भगवान की भक्ति, पूजा, नामस्मरण, गुणस्मरण इस राग को हेय मानना कठिन पड़ जाता है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, इससे पूर्व जो चार भाव कहे थे... आहा! उदय, उपशम, क्षयोपशम ये भेद भी कहे थे न? आहाहा! वे सब **शुद्धनिश्चयनय के बल से वे हेय हैं।** अकेले ज्ञायकभाव के अवलम्बन में चारों भाव का अवलम्बन है नहीं। इसलिए इस अपेक्षा से वे हेय है। चारों ही भाव का आश्रय करनेयोग्य नहीं है। आहाहा! शुभराग दया,

दान, व्रत, भक्ति, पूजा (का) भाव होता है, होता है, परन्तु आदरणीय नहीं। जब वे भाव आदरणीय नहीं। आहाहा! तो इससे उपशम, क्षयोपशम और क्षायिक तो निर्मल है, वे तो मलिन हैं। निर्मल को जब हेय कहा, फिर मलिन तो हेय कहीं रह गया। आहाहा!

निर्मल ज्ञायक केवलज्ञानपर्याय, अनन्त चतुष्टय प्रगट हुए, वह पर्याय भी त्रिकाल निश्चयनय की दृष्टि से हेय है। आहाहा! यहाँ तो अभी व्यवहार, दया, दान, व्रत, भक्ति को हेय मानना इसे कठिन पड़ता है और हेय माने उसे मिथ्यात्वी मानता है। आहाहा! यहाँ तो त्रिकाली सनातन वस्तु, एकरूप रहनेवाले चैतन्यस्वभाव की दृष्टि से देखें तो वे शुद्ध और अशुद्ध दोनों भाव हेय हैं, छोड़नेयोग्य हैं, त्यागनेयोग्य हैं। आहाहा! यहाँ तो अभी शुभराग त्यागनेयोग्य है (ऐसा कहें), वहाँ इसे कठिन पड़ता है। आहा! चन्दुभाई कहाँ गये? आये नहीं? ठीक नहीं होगा। आहाहा!

यह ५० वीं गाथा बहुत ऊँची है। अर्ध सैंकड़ा। आहाहा! पचास। भगवान आत्मा एक ही समय में परिपूर्ण प्रभु पड़ा है। परिपूर्ण आनन्द, परिपूर्ण ज्ञान, परिपूर्ण सत्ता, परिपूर्ण श्रद्धा, परिपूर्ण शान्ति, उपशमरस आदि परिपूर्ण से भरा पड़ा है। उस त्रिकाली स्वभाव की दृष्टि से देखें तो बन्ध और मोक्ष की दोनों पर्यायें हेय हैं। आहाहा! केवलज्ञान और केवलदर्शन भी हेय है। आहाहा! क्योंकि साधक को वे हैं नहीं और हैं नहीं, उसका लक्ष्य करने जायेगा तो राग होगा। यह कठिन विषय है, भाई! आहाहा!

बड़ा विवाद, झगड़ा यह होता है न? निमित्त से होता है, निमित्त से होता है। निमित्त से होता है; नहीं होता—ऐसा माने, वह मिथ्यादृष्टि एकान्ती है-ऐसा कहते हैं। अरे, जगत्! आहाहा! यहाँ तो कहते हैं कि निमित्त तो एक ओर रहा, मोक्ष और बन्ध वे निमित्त से हैं—ऐसा तो है ही नहीं। आत्मा में बन्ध और मोक्ष वे निमित्त से हैं —ऐसा तो है नहीं। अपनी योग्यता से बन्ध और मोक्ष है। आहाहा! उन्हें भी यहाँ त्रिकाल की दृष्टि से अन्तर्मुख दृष्टि करने में वे मददगार नहीं हैं, उनका आश्रय लेने योग्य नहीं हैं। इसलिए चारों भाव हेय हैं। आहाहा! गजब बात है।

यह वापस ऐसी बात करते हैं कि ये सोनगढ़वाले ही यह कहते हैं। परन्तु यह कहाँ सोनगढ़ का है? यह नियमसार सोनगढ़ का सूत्र है? कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि मैंने तो मेरे लिये बनाया है। दूसरे शास्त्रों की तो प्ररूपणा की है परन्तु यह तो मैंने मेरे लिये बनाया है। आहाहा! वे कुन्दकुन्दाचार्य ऐसा कहते हैं... पंचम काल के प्राणी, पंचम काल के

साधु, पंचम काल के श्रोताओं को ऐसा कहते हैं... आहाहा! गजब है। आठ वर्ष की बालिका हो या करोड़ पूर्व की आयुष्यवाला आदमी हो। आहा! तैंतीस सागर की स्थितिवाला देव हो या अन्तर्मुहूर्त की स्थितिवाला निगोद का जीव हो... आहाहा! सब पर्याय है। इस त्रिकाली ज्ञायकभाव की अपेक्षा से वे सब हेय हैं, छोड़नेयोग्य हैं, लक्ष्य करनेयोग्य नहीं, आश्रय करनेयोग्य नहीं, सन्मुख होनेयोग्य नहीं। आहाहा! शरण करनेयोग्य नहीं, उन्हें उत्तम माननेयोग्य नहीं। आहाहा! ऐसी बात है।

शुद्धनिश्चयनय के बल से... चारों ही भाव। आहाहा! ज्ञानी को उदयभाव होता है, राग होता है। जब तक वीतराग न हो, तब तक राग और दुःख होता है, परन्तु वह हेय है। आहाहा! राग, शुभराग... आहा! वह भी हेय है, त्यागने योग्य है। अरे! पंचम काल के प्राणी अल्प पुण्य लेकर आये। भगवान महाविदेह में बिराजते हैं। कहाँ जन्म छोड़कर यहाँ जन्म (में) आये। आहाहा! उसे परमात्मा की वाणी ऐसा कहती है... आहाहा! प्रभु! तू अन्दर में एकरूप वस्तु है, तेरी वर्तमान पर्याय-अवस्था त्रिकाली पर जाये, इस अपेक्षा से वही एक आदरणीय है। जो पर्याय उस पर जाये, उसके (पर्याय) प्रति लक्ष्य करने जैसा नहीं - ऐसा कहते हैं। आहाहा! क्या कहा समझ में आया? जो पर्याय-अवस्था अन्तर में त्रिकाली ज्ञायकभाव पर जाये, वह पर्याय भी हेय है। आहाहा! (जो) पर्याय, स्वद्रव्य का आश्रय करे, वह पर्याय भी हेय है, उस पर्याय का विषय जो त्रिकाल है, आहाहा! अखण्डानन्द प्रभु सनातन वज्र, ज्ञान वज्र, ज्ञान का हीरा ऐसा चैतन्य प्रभु भगवान की दृष्टि में, उसकी दृष्टि भी हेय है। आहाहा! गजब बात है! कहो, यह सब तब कहाँ था? यह सब किया था, वर्षी तप किया था न? तब यह बात कहाँ थी? कान में पड़ी थी? सुनी थी? आहाहा!

श्रोता : पूरे भारत में कहाँ थी?

पूज्य गुरुदेवश्री : बहुत कठिन बात, बापू! कठिन अर्थात् अपूर्व। आहाहा!

पूर्णानन्द का नाथ एक स्वरूप से बिराजमान है, उसे अनेकपने का आरोप नहीं देना। आहाहा! त्रिकाली भगवान तो सादि-अनन्त और अनादि-सान्त; संसार अनादि-सान्त, मोक्ष, सादि-अनन्त... आहाहा! उस त्रिकाली सनातन में इन दो का अभाव है; इसलिए त्रिकाली सनातन की अपेक्षा से दोनों हेय हैं। आहाहा! इसका विस्तार तो यह है। संक्षिप्त तो बहुत संक्षिप्त कर दिया। आहाहा! संसार अनादि-सान्त (अशुद्ध) पर्यायरूप से; मोक्ष सादि-अनन्त शुद्ध (पर्यायरूप से), परन्तु वे सब पर्याय हैं। उसकी अवधि एक

समय की है। भले रहे सादि-अनन्त, परन्तु उसकी अवधि एक समय की है। बन्ध और मोक्ष एक समय की (अवधिवाली पर्याय है)। बन्ध की अवस्था एक समय है, उसका अभाव करके दूसरे समय जो पर्याय हो, वह एक समय की अवधिवाली है। आहाहा! क्या कहा?

भगवान आत्मा में राग का बन्ध जो अनादि अज्ञान, वह एक समय की पर्याय है। एक 'क' बोले, उसमें असंख्य समय जाते हैं। उसमें एक समय की स्थिति है और रूपान्तर हो (अर्थात् कि) बन्ध का अभाव होकर मोक्ष हो, उसकी भी एक समय की स्थिति है। आहाहा! तो वह भले सादि-अनन्त रहे और संसार भले अनादि-सान्त हो गया परन्तु दोनों वस्तु की चीज़ में नहीं है। आहाहा! ऐसा कहाँ मुम्बई में सुनने मिले? धूल-पूरे दिन धूल और पैसा और... आहाहा! मुम्बई में क्या, देश में भी मुश्किल है न, बापू! कितना विरोध करते हैं! निमित्त से होता है, निमित्त से (होता है - ऐसा) न माने, वह एकान्त मिथ्यादृष्टि है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! बापू!

प्रत्येक द्रव्य, पर्यायरहित कोई द्रव्य होता है किसी काल में? तीन काल में पर्यायरहित द्रव्य होता है? तब अब उस पर्याय को दूसरा करे, यह कहाँ से आया? आहाहा! यहाँ तो उस पर्याय को भी उड़ा देते हैं। पर से पर्याय हुई नहीं, अपने से हुई है, राग में अटकने की बन्ध पर्याय और मोक्ष-केवलज्ञान होने की मोक्ष पर्याय, वह एक समय में अन्तर पड़ जाता है। एक समय में बन्ध और दूसरे समय में मोक्ष। आहाहा! परन्तु वे दोनों (एक) समय की स्थितिवाले हैं। आहाहा! त्रिकाल की स्थिति की अपेक्षा से उन्हें हेय और छोड़नेयोग्य (कहा) है। आहाहा!

किन्तु शुद्धनिश्चयनय के बल से वे हेय हैं। किस कारण से? अब कारण देते हैं। **हेय हैं। किस कारण से? क्योंकि वे परस्वभाव हैं...** आहाहा! गजब गाथा है!! केवलज्ञान, वह परस्वभाव; त्रिकाल स्वभाव नहीं। आहाहा! राग, दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम तो विकार परस्वभाव है ही। आहाहा! देवीलालजी! ऐसी बात है, कठिन बात है। आचार्य महाराज कहते हैं, मैंने तो मेरे लिये बनाया है। तू सुन और तुझे बैठे तो बिठा, अनादर करना नहीं। सत्य ऐसा महँगा-ऐसे अनादर करना नहीं, बापू!

भाई! तेरा नाथ भगवान इतना है कि जिसकी कीमत के समक्ष एक समय की पर्याय की कीमत है नहीं। आहाहा! त्रिकाली ध्रुव की कीमत के समक्ष इस केवलज्ञान की

एक समय की पर्याय की भी कीमत नहीं। आहाहा! यहाँ विवाद उठे (कि) गुरु की भक्ति आदरने (योग्य) नहीं? भक्ति करने योग्य नहीं? भगवान! सुन न, बापू! भक्ति का भाव आवे, होता है परन्तु वह त्यागने योग्य है, वह आश्रय करने योग्य नहीं। आहाहा! भाव-शुभभाव होता है। आहा! परन्तु वह दुःखरूप है और उसका अभाव होकर आनन्दरूपदशा होती है। द्रव्यस्वभाव का जो आनन्द है; शुभभाव.. आहा! चाहे तो तीर्थंकरगोत्र बाँधने का शुभभाव (हो) परन्तु वह दुःखरूप है, प्रभु! क्योंकि प्रभु आनन्दस्वरूप है।

भगवान आत्मा तो अनादि-अनन्त, अनादि-अनन्त अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति है। एक समय भी दुःख और आकुलता जिसमें नहीं। आहाहा! और संसार की आकुलता, अरे! समयान्तर होकर निराकुलता प्रगट हो परन्तु वह भी पर्याय है। आहाहा! त्रिकाली निराकुल आनन्द के समक्ष नयी प्रगट हुई अनाकुलता पर्याय, वह भी हेय है। **किस कारण से ? क्योंकि वे परस्वभाव हैं...** आहाहा! गजब बात है। फिर लोग तो सोनगढ़ के नाम से कहते हैं कि व्यवहार उड़ाते हैं, व्यवहार से लाभ होता है—ऐसा नहीं कहते, अकेली निश्चय की बात ही करते हैं। उसे जँचा हो, ऐसा कहे। जो जँचा हो, वह आत्मा (अर्थात् कि) जो अभिप्राय जँचा हो, वह तो आत्मा वैसा हो गया होता है, पर्याय में आत्मा ही ऐसा हुआ हो। अब करना क्या उसे? आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि जैसा राग की एकता का भाव, परभाव, परस्वभाव है, वैसा मुक्ति का स्वभाव परस्वभाव है। आहाहा! गजब बात है प्रभु! कान में पड़ना मुश्किल पड़े। आहाहा! मात्र समयान्तर है। वस्तु तो सनातन त्रिकाल है, उसमें उपजना या विनशना है ही नहीं। अब उत्पाद-व्यय जो है, उत्पाद हुआ मोक्ष का, व्यय हुआ बन्ध का, वह भी समय की स्थिति है। आहाहा! भले दूसरे समय मोक्ष रहे परन्तु अवधि तो एक समय की ही है। आहाहा! त्रिकाली मुक्तस्वरूप भगवान आत्मा, उसे मुक्तस्वरूप कहना वह भी मानो कहीं किसी की बन्ध की अपेक्षा थी, इसलिए छूटा और मुक्त है - ऐसा भी नहीं। वह तो त्रिकाली मुक्तस्वरूप ही है। आहाहा! कठिन लगे, अनजाने व्यक्ति को पहले-पहले सुनता हो उसे तो ऐसा लगे कि यह जैनधर्म है? यह जैनधर्म ऐसा होगा? ऐसा अन्य धर्म निकाला कहाँ से? कहो, सेठ! आहाहा!

है, पर्याय है, बन्ध है, मोक्ष है परन्तु एक समय की अवधिवाले, दोनों एक समय की अवधिवाले। आहाहा! केवलज्ञान भी एक समय रहकर दूसरे समय दूसरा हो जाता है

और भगवान जो अन्दर है, वह तो एकरूप त्रिकाल अनादि और एकरूप रहता है। आहाहा! सनातन टंकोत्कीर्ण वस्तु, आहाहा! जैसे टाँकी से उकेर कर कोई एकाकार वस्तु निकाली हो, वैसा एकाकार त्रिकाली चिदानन्दस्वरूप भगवान, उसे आदि और अन्त नहीं, उत्पन्न और व्यय नहीं, उत्पाद और व्यय का जिसमें अभाव है। आहाहा!

इस प्रकार तीनों को सत् कहना। उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत्-तीनों सत् हैं। आहाहा! तत्त्वार्थसूत्र में (सूत्र है)। उत्पाद-व्यय और ध्रुव तीनों सत् हैं परन्तु उत्पाद-व्यय एक-एक समय का सत् है। उत्पाद और व्यय एक समय का सत् है और प्रभु है, वह अनादि का सत् है। आहाहा! अरे रे! यह कैसे जँचे? इस दुनिया की धमाल... आहाहा! पूरे दिन स्त्री-पुत्र और धन्धा-व्यापार, और उसमें यह बात। आहाहा!

प्रभु कहते हैं, तुझमें मुक्ति भी नहीं है। आहाहा! उसकी दृष्टि कर। आहाहा! क्योंकि मुक्ति की अवस्था भी एक समय की है, दूसरे समय दूसरी पर्याय होती है, तीसरे समय तीसरी पर्याय होती है। वह उत्पाद का एक ही समय है, व्यय का भी एक ही समय है। आहाहा! भले सत् हो... आहाहा! त्रिकाली सनातन सत् अकेला ज्ञायकभाव, जिसमें हीनाधिकपना नहीं, जिसमें उत्पाद-व्यय नहीं, जिसमें न्यूनाधिकता ये दो नहीं। आहाहा! जिसमें एकरूपता त्रिकाल है। आहाहा! ५० वीं गाथा में गजब किया है।

श्रोता : आपने गजब किया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रभु! तू कौन है? आहाहा! प्रभु! तुझे कहाँ दृष्टि देनी है? जो सनातन रहे, वहाँ देनी है या बदले, उसमें दृष्टि देनी है? आहाहा! बदले वह तो पलटा/व्यय हो जायेगा और वह भी वह व्यय होगा पारिणामिक में, ध्रुव में। आहाहा! वहाँ दृष्टि को छोड़ दे, आहाहा! उत्पाद-व्यय की दृष्टि को छोड़ दे। आहाहा! है तीनों सत्। यहाँ एक सत् ऊपर दृष्टि (रख)। ध्रुव पर दृष्टि करनेवाला उत्पाद-व्यय है। दृष्टि करनेवाला जिसे हेय मानता है, वह (वह स्वयं) है। आहाहा!

जो हेय कहता है, वह हेय कौन कहता है? यह पर्याय मानती है या कोई अध्धर से मानता है? आहाहा! पर्यायरहित द्रव्य तो कभी तीन काल में होता नहीं। पर्यायरहित द्रव्य हो तो वह तो गधे के सींग जैसा हुआ। जैसे गधे को सींग नहीं होते, उसी प्रकार इस पर्यायरहित द्रव्य नहीं होता। आहाहा!

यहाँ कहते हैं पर्याय भले हो! आहाहा! तीनों काल में किसी समय में पर्यायरहित

द्रव्य नहीं होता, तथापि उस एक समय की पर्याय की कीमत नहीं है। भले वह एक समय में पर्याय में रूपान्तर हो जाये। कहाँ बन्ध का भाव और कहाँ मोक्ष का भाव! आहाहा! एक समय में रूपान्तर! जो तीन काल-तीन लोक को जाने और बन्ध की पर्याय राग को तो यह जानने योग्य है, यह भी पता नहीं। वह रूपान्तर होकर केवलज्ञान प्रगट होता है। आहाहा! वह भी यहाँ त्रिकाल एकरूप रहनेवाला प्रभु, उसके आश्रय में वह भी हेय है। कठिन लगे, बापू! क्या हो? बहुत से तो ऐसा कहते हैं कि यह सोनगढ़वालों ने घर का निकाला है, घर का धर्म निकाला है। आहाहा! नया निकाला है। हम चलते हैं, परम्परा चलती है, हमारी परम्परा चलती है, यह करना, ऐसा करना, ऐसा करना, उससे यह तो सब दूसरा प्रकार ही निकाला। अरे प्रभु! तेरे स्वरूप में ही यह है, प्रभु! प्ररूपणा में तो है ही, कथनशैली में तो है ही, शास्त्र में तो है ही परन्तु तुझमें है। आहाहा!

जितना यह कहा जाता है... आहाहा! एक समय में वह त्रिकाली वर्तमान है, ऐसा त्रिकाली! भले भविष्य में रहे, सनातन एकरूप (रहता है) आहाहा! उसे जाननेवाली पर्याय है, जाननेवाली ध्रुव नहीं, वह पर्याय जाननेवाली है। आहाहा! अरे! मोक्ष की पर्याय भी जो केवलज्ञान, जो द्रव्य को जाननेवाली है, जो तीन काल को जाननेवाली है... आहाहा! वह पर्याय जिसने द्रव्य का आश्रय किया है और पर्याय प्रगट हुई है, वह भी हेय है। आहाहा! गजब बात है, प्रभु! ऐसी बात कहीं मिलना मुश्किल पड़े ऐसा है। आहाहा! कठिन बात है, सुनना कठिन पड़े ऐसी है। लोग तो कुछ के कुछ रास्ते चढ़ गये हैं। आहाहा! यह सोनगढ़ को तो तिरस्कार.. तिरस्कार... तिरस्कार.. (करते हैं)। यह तो एकान्त मिथ्यात्वी हैं, एकान्त मिथ्यात्वी हैं (-ऐसा कहते हैं)। आहाहा! अरे प्रभु! तेरी यह मान्यता भी एक समय की है, प्रभु! यह तेरी विपरीत मान्यता भी एक समय की है। यह एक समय की पलटने में देरी नहीं लगेगी। आहाहा! त्रिकाली का नाथ अन्दर बिराजता है, प्रभु! उसका आश्रय लेने पर एक समय की मिथ्यात्व पर्याय नहीं रह सकेगी। आहाहा! ५० (गाथा में) गजब बात है।

५० वीं गाथा में तीन बोल लेंगे। एक तो हेय कहा **क्योंकि वे परस्वभाव हैं...** दो बात। एक तो हेय कहा, मोक्ष और बन्धपर्याय दोनों हेय कही। कारण? हेय का कारण— वह परस्वभाव है, वह त्रिकाली स्वभाव नहीं। आहाहा!

वह सनातन सत्य है, जिसे कुछ पलटना नहीं, उपजना नहीं, बदलना नहीं - ऐसा

वह सत्य है। आहाहा! उस सत्य की अपेक्षा से केवलज्ञान आदि परस्वभाव है। हेय तो कहा परन्तु हेय का कारण कौन? कारण क्या? कि परस्वभाव है। आहाहा!

अरे! प्रभु! केवलज्ञान परस्वभाव!! गजब बात, भाई! अभी तो विकार को परस्वभाव मानने में विवाद (उठता है)। विकार परस्वभाव? तो विकार तो स्वभाव हो जायेगा, पर का स्वभाव। वह तो पर के निमित्त से विकार होता है। वह विकार पर के निमित्त से न हो तो स्वभाव हो जायेगा। यहाँ कहते हैं कि पर के निमित्त बिना हो, वह उसका विभावस्वभाव अपना है। आहा! वह बन्ध अपना है। आहाहा! बन्ध की पर्याय (की) अवधि एक समय की है, प्रभु! आहाहा! भले समयान्तर होते-होते अनन्त काल गया परन्तु मुद्दत तो एक समय की ही है। अनादि है परन्तु अवधि उसकी एक समय की है और जब गुलाँट खाता है-द्रव्य की दृष्टि करता है, तब मुक्ति भी एक समय की है। इसलिये वह मुक्ति की पर्याय- जो पर्याय द्रव्य का आश्रय करती है, वह पर्याय भी हेय है, परस्वभाव है। आहाहा! परस्वभाव, स्व -स्वभाव का आश्रय करता है। हेय है, वह स्व का आश्रय करता है। आहाहा! ऐसी बात है। कठिन लगे प्रभु! क्या हो?

यहाँ तो (कलश में) कहा है न कि **शुद्धतत्त्वरसिकाः प्रवदन्ति।** शुद्धतत्त्व के रसिक तो ऐसा ही कहते हैं। ऊपर आ गया न? शुद्धतत्त्व के रसिक पुरुष तो ऐसा ही कहते हैं। आहाहा! अनादि काल से प्रभु! राग-द्वेष और अज्ञान में (रहा) परन्तु उनकी अवधि तो एक समय की है। वह समय-समय करते अनन्त काल गया और रूपान्तर होने पर भी प्रभु एक ही समय है। मोक्ष भी एक ही समय रहता है, द्रव्य त्रिकाल रहता है। आहाहा! मोक्ष की पर्याय एक समय (रहती है)। दूसरे समय दूसरी, वह नहीं, वह नहीं, वैसी। वह नहीं, वैसी। वैसी अवश्य परन्तु वह नहीं। आहाहा! ऐसी चीज़ है। सेठिया गये? है? ठीक! ये सुनने जैसा है, सेठिया! आहाहा! आहाहा!

दो कारण कहे। एक स्वद्रव्य के आश्रय की अपेक्षा से सभी चार भाव हेय हैं। हेय हैं उनका कारण (क्या)? कि उसका कारण (वे) परस्वभाव हैं। आहाहा! दूसरी बात- और परस्वभाव हैं, इसलिये... आहाहा! गजब बात है। और **वे परस्वभाव हैं और इसीलिए परद्रव्य हैं।** आहाहा! गजब बात है। सुनना कठिन पड़े, प्रभु! तेरा स्वरूप ऐसा है, भाई!

अनादि अनन्त सनातन चैतन्य का हीरा अनन्त गुण के रत्न से भरपूर सनातन नित्य ध्रुव है। उसकी दृष्टि की अपेक्षा से चार भाव भी हेय हैं क्योंकि परस्वभाव हैं। आहाहा!

केवलज्ञान परस्वभाव है। त्रिकाली स्वस्वभाव है, उसकी अपेक्षा से, उत्पन्न हुआ भाव- यह तो उत्पन्न हुआ भाव है और द्रव्य है, वह तो सनातन सत्य है। आहाहा! ऐसी बात है। हीराभाई! आहाहा!

५० वीं गाथा, कुन्दकुन्दाचार्य स्वयं ने स्वयं लिखा है न **पुव्वुत्तसयलभावा परदव्वं परसहावमिदि हेयं।** यह तो अर्थकार-टीकाकार कहते हैं (परन्तु) स्वयं कहते हैं कि मैंने मेरे लिये बनाया है, प्रभु! मेरी दृष्टि द्रव्य पर पड़ी है, इससे मैं ऐसा कहता हूँ कि बन्ध और मोक्षपर्याय, वह हेय है और उसका कारण ऐसा कहता हूँ कि वे परस्वभाव हैं और इसलिए ही वे परद्रव्य हैं। आहाहा! पर के साथ सम्बन्ध नहीं। अपनी ही पर्याय की बात है। बन्ध और मोक्ष की पर्याय अपनी पर्याय की बात है परन्तु वह परद्रव्य है। आहाहा! क्यों? जैसे परद्रव्य में से नयी निर्मल आनन्द की पर्याय नहीं आती, वैसे पर्याय-मोक्ष की पर्याय हो तो भी उसमें से नयी आनन्द की पर्याय नयी पर्याय में से नहीं आती। आहाहा! गजब बात है। भाग्यवान को कान में पड़े ऐसा है। आहाहा!

राग तो दु:खदायक है, वह तो संसार है, वह तो एक समय की अवस्था पलट सकती है परन्तु पलटकर मोक्ष हो, उस समय की अवस्था भी एक समय की ही है। क्यों? कि त्रिकाली की अपेक्षा से एक समय है; इसलिए त्रिकाली की अपेक्षा से हेय है; इसलिए त्रिकाली के स्वभाव की अपेक्षा से परस्वभाव है। **और इसीलिए...** हेय के कारण परस्वभाव है, इसीलिए वह परद्रव्य है। आहाहा!

अपनी केवलज्ञानपर्याय, सिद्धपर्याय, अनन्त चतुष्टय बाह्य प्रगट हुए; शक्ति में जो अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्द और वीर्य था, वह पर्याय में अनन्त चतुष्टय प्रगट हुए, तथापि कहते हैं कि वह तो परद्रव्य है। आहाहा! क्योंकि उसमें से नयी पर्याय नहीं आती। जैसे परद्रव्य में से नयी आनन्द की पर्याय नहीं आती, वैसे इस पर्याय में से नयी आनन्द की पर्याय नहीं आती। आनन्द की पर्याय आती है भगवान त्रिकाल त्रिलोक के नाथ में से आती है। आहाहा! जिसमें से अनन्त आनन्द की पर्याय आवे, उसे हम स्वद्रव्य कहते हैं। आहाहा! और जिस पर्याय में से नयी आनन्द की पर्याय न आवे, उसे हम स्वद्रव्य की अपेक्षा से परद्रव्य कहते हैं। गजब बात है। आहा! **इसीलिए परद्रव्य हैं।** आहा! इसमें विशेष आयेगा। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)